नवजागरण और भारतीय मुसलमान

डॉ. एम. मूसा

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
एस.एस.एस.यू. कालाडी

तटस्थ नीति और प्रगतिशील दृष्टि इतिहास-लेखन के लिए अनिवार्य है। लेकिन अधिकांश इतिहास-ग्रन्थ इस रूप में नहीं पाये जाते हैं। नवजागरण सम्बन्धी इतिहास ग्रन्थों के पन्ने भी इससे भिन्न नहीं हैं। किसी-न-किसी पूर्वाग्रह या विशेष दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये ये ग्रन्थ पुनर्पाठ के द्वारा इतिहास की वास्तविक घटनाओं को तलाशने की प्रेरणा देते हैं। यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक होगा कि इतिहास की घटनाओं की वास्तविकता को यथा-तथा रखने में भी खतरा है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से जुड़ी घटनाओं की वास्तविकताओं को प्रगतिशील दृष्टि से रखना ही उचित होगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक को भारतीय नवजागरण काल कहा जाता है। एक ओर यह दौर ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजनैतिक सर्वोच्चता का समय था तो दूसरी ओर एक प्रकार के राजनैतिक-सांस्कृतिक टकराव का समय भी था। लेकिन औपनिवेशिक भारत के किसानों के प्रतिरोध और विविध धर्म, जाति एवं समुदाय के नायकों द्वारा किये गये

सुधारात्मक कार्य को देखते हुए यह मानना भ्रामक लगता है कि मात्र यूरोपीय शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण ही भारतीय नवजागरण सम्भव बना है। इसे एक ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप में देख लेना ही उचित होगा।

कुछ अपवादों के रहते हुए भी भारतीय नवजागरण पर डॉ. रामविलास जी द्वारा अपनायी गयी दृष्टि सकारात्मक है। मार्क्सवादी विचारक होते हुए भी उन्होंने नवजागरण काल को यथासम्भव वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार नवजागरण यूरोपीय इतिहास में घटित नवजागरण के दौर में विकसित प्रवृत्तियों तक सीमित नहीं है। यह आवश्यक भी नहीं है कि भारतीय इतिहास की व्याख्या और मूल्यांकन के लिए यूरोपीय इतिहास को आधार और प्रतिमान स्वीकार किया जाय। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'नवजागरण' की एक ऐसी परिभाषा दी है जो उसे किसी एक दौर तक सीमित परिघटना की तरह नहीं, बल्कि एक आवृत्तिपरक प्रवृत्ति के रूप में व्याख्यायित करती है।

डॉ. शर्मा ने 'एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में संक्रमण' को नवजागरण कहा है, जो बदलते हुए आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर विकसित सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में घटित होता है। उसका रूप 'जातीय जागरण' का होता है। दूसरे शब्दों में, 'नवजागरण' किसी समाज की (जिसे रामविलास जी 'जाति' या 'नेशन' कहना पसन्द करते हैं।) एक मूल्य-व्यवस्था से दूसरी मूल्य-व्यवस्था में संक्रमण का माध्यम बनता है। मार्क्सवादी नज़रिए से देखा जाय तो ऐतिहासिक भौतिकवाद की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में नवजागरण की इस प्रक्रिया की बार-बार आवृत्ति होना स्वाभाविक है—यद्यपि उसका सन्दर्भ और रूप भिन्न हो सकते हैं। हर मूल्य व्यवस्था समय-सापेक्ष है। जो मूल्य-व्यवस्था एक दौर में गत्यात्मक लगती है वही आगामी दौर के लिए बाधा बन जाती है और उसके इन अन्तर्विरोधों से ही नई गत्यात्मकता या मूल्य-व्यवस्था का विकास सम्भव होता है।

डॉ. शर्मा के अनुसार नवजागरण के चार चरण हैं। पहला चरण ऋग्वैदिक काल है, दूसरा उपनिषद् काल, तीसरा भक्ति आन्दोलन और चौथा चरण हिन्दी प्रदेश में 1857 की क्रान्ति के बाद घटित होता है। इस चौथे चरण के अपने चार चरण भी हैं। लेकिन इस विभाजन में रामविलास जी ने कहीं भी यह स्थापित नहीं किया है कि इस वर्गीकरण के पीछे आधारभूत आर्थिक या उत्पादन सम्बन्ध क्या हैं जिसमें मार्क्सवादी नज़रिए से उसकी पुष्टि हो जाये। विचारों और संस्कृति के विकास को केवल आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर ही नहीं समझा जा सकता, क्योंकि उनकी अपनी एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया होती है। उन्नीसवीं शती के नवजागरण में कई धाराएँ एक साथ प्रवाहमान रही हैं, जो उत्पादन-सम्बन्धों से ज्यादा वैचारिक प्रक्रियाओं की अपनी द्वन्द्वात्मकता से विकसित हुई हैं।

उन्नीसवीं शती के नवजागरण के वैचारिक संक्रमण में भारत के चार तरह के वर्गों को पैदा किया है। प्रथम वर्ग पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति से प्रभावित होकर ब्रिटिश शक्ति के साथ औपनिवेशिक साम्राज्य को स्थायित्व देने में उसका साथ देने लगा था। दूसरा वर्ग सत्तात्मक स्वाधीनता और राष्ट्रवाद के लिए सामाजिक सुधार एवं बदलाव चाहने वालों का था। तीसरा वर्ग इस बात को अच्छी तरह से जानने वालों का था कि ब्रिटिश शासन, जो अब पहले से अधिक शक्तिशाली था, उनके अपने धार्मिक और सांस्कृतिक विरासतों के आदर्शों के मुताबिक रहने के प्रयासों में कोई सहायता नहीं करने जा रहा है। ये समझौतों और तुष्टीकरण की नीति में भरोसा नहीं रखते थे। लेकिन उन्हें आगे बढ़ना था। इसलिए वे सारे सरकारी हस्तक्षेपों को खारिज करते हुए और ईश्वरीय सहायता तथा अपने साथियों को धर्म की मौलिकता की ओर ले जाने लायक नवीकरण कार्य करने में लग गये थे। चौथा वर्ग उन लोगों का था जो धर्म निरपेक्ष एवं मानवीयता की दृष्टि अपनाकर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में जुड़े हुये थे और भारत का बहुलांश इस मानसिकता के थे। उन्नीसवीं शती के नवजागरण– समय के मुस्लिम समाज के अन्तिम तीनों वर्ग उभर आये थे।

अंग्रेज़ एवं मुसलमानों के बीच की शत्रुता एक नई बात नहीं थी। विश्व–स्तर पर चली उपनिवेशीकरण–प्रक्रिया में मुसलमान ही अंग्रेज़ों की बड़ी बाधा बनी थी। मध्यकाल में मुसलमान भारत की सत्ता अपने हाथों में ले ली थी। लेकिन औरंगजेब की मृत्यु के बाद मराठा, जाट, सिक्ख जैसे क्षेत्रीय समुदाय के युद्धों के कारण उनकी सत्ता में क्षरण होने लगा था। इसलिए उपनिवेशकाल में ब्रिटिश परमाधिकार को चुनौती देने लायक कोई सत्ता इस महाद्वीप में बाकी नहीं रह गया था।

भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद अन्तिम मुगल सम्राट भी सत्ता से पदच्युत एवं निर्वासित हो गये थे। 1858 के महारानी विक्टोरिया के घोषणा–पत्र के साथ भारत में ब्रिटिश राज में मानीखेज परिवर्तनों के चिहन् दिखाई देने लगे थे। भारतीय समाज में हिन्दू और मुस्लिम के नाम पर और हिन्दुओं के बीच ऊँची जातियों, जैसे ब्राह्मण और नीची जातियों जैसे चांडाल के नाम पर उपस्थित व्यापक विभेद पर ध्यान देते हुए यह तय किया गया कि रोमन साम्राज्य की तरह ब्रिटिश शासन को कायम रखने के लिए 'बाँटो और राज करो' की नीति कैसे अपनायी जाये।

ब्रिटिश सत्ता द्वारा जारी किये गये विरोधी नीति के कारण भारत के मुसलमानों में अनिश्चितता की स्थिति आ गयी थी। यह मुसलमानों में अंग्रेज़ों के प्रति विरोधी मानसिकता बढ़ाने का कारण बन गया था। ऐसे मुस्लिम समाज का एक बहुलांश सरकारी हस्तक्षेपों को खारिज करते हुए दूर रहने लगे थे। यों अंग्रेज़ों की विरोधी नीति और मुसलमानों के पीछे रहने की प्रवृत्ति उनके सामाजिक पिछड़ेपन का कारण बन गया था। तब तक मध्य पश्चिमी इस्लामी देशों में तजदीद (स्वतन्त्र निर्णय लेने

की संकल्पना) के आधार पर साउदी अरेबिया के अब्दुल वहाब तथा ईजिप्त के शैक मुहम्मद अब्दु और मुहम्मद रशीद रिदा के तत्त्वावधान में इस्लामी शरीअत को आधुनिक जीवन-सन्दर्भ के अनुसार पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास शुरू हो चुका था। भारत के कुछ प्रबुद्ध मुसलमान भी इस नवीकरण प्रक्रिया में दीक्षित थे।

नवीकरण के आलोक से आलोकित भारत में प्रबुद्ध मुस्लिम पंडित सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़ गये। मुस्लिम समाज की मुक्ति हेतु आगे आये। भारतीय मुसलमानों के नवजागरण का अधिकांश आन्दोलन इन प्रबुद्ध पंडितों के तत्त्वावधान में चला है। अन्य प्रकार के कुछ नवीकरण प्रक्रियाएँ भी देखी जा सकती हैं। इस प्रकार तजदीद को मानने वाले आधुनिकतावादियों, परम्परावादी उलमाओ, तरीकत पर भरोसा रखने वाले पीर-मुरीदों तथा शिक्षित एवं प्रबुद्ध नेताओं द्वारा भारतीय मुसलमानों की जागरण प्रक्रिया सम्पन्न हुई थी। अहले हदीस, तआयूनी, इसलाही आदि आन्दोलन तजदीद को मानने वाले (जो वहाबी आन्दोलन के नाम से जाना जाता है), टिटू, फरादी, देवबंद आदि परम्परावादी उलमाओ, अहमदिया आन्दोलन तरीकत वालों तथा अंजुमन-ए-हिदायत-ए-इस्लाम, अलीगढ़ आन्दोलन प्रबुद्ध एवं शिक्षित मुसलमानों द्वारा चलायी गयी नवजागरण प्रक्रियाओं के उदाहरण हैं।

साउदी अरेबिया के अब्दुल वहाब ने मुस्लिम समाज के नवीकरण के लिए प्रगतिशील कार्य किया था। उनके द्वारा संस्थापित सम्प्रदाय में दीक्षित होकर चलने वाली नवीकरण की प्रक्रिया वहाबी आन्दोलन नाम से भी जाना जाता है। भारत में इसका प्रवर्तक सय्यद अहमद रायबरेली है। इनके एक मुरीद सय्यद नसीर ने अहले हदीस की स्थापना की थी। मौलाना करामत अली द्वारा संस्थापित तआयूनी आन्दोलन इसकी और एक शाखा है। इन दोनों आन्दोलनों ने धर्म निरपेक्ष दृष्टि से मुस्लिम समाज और सांस्कृतिक जीवन में नवीकरण लाने का कार्य किया था। केरल का इस्लाम आन्दोलन भी इसी तर्ज पर चला था।

पश्चिम बंगाल के मीर निसार अली का टिटू मीर आन्दोलन शरईअतुल्ला का फरादी आन्दोलन किसानी एवं आर्थिक समस्याओं को लेकर आगे आये थे। इसलिए इन दोनों आन्दोलनों को हिन्दू जमींदार एवं ब्रिटिश सरकार का सख्त विरोध झेलना पड़ा था।

देवबंद आन्दोलन का नेतृत्व कर रहा था उलेमा वर्ग। इस उलेमा वर्ग ने 1857 की क्रान्ति में सक्रिय रूप में भाग लिया था। 1857 की क्रान्ति की विफलता की इस उलेमा वर्ग पर क्या प्रतिक्रिया हुई, इसका विशद वर्णन इतिहास की पुस्तकों में नहीं मिलता है। यही वर्ग ब्रिटिश कोप का मुख्य शिकार बना था। बड़ी संख्या में यह जिहादी नेतृत्व प्रत्यक्ष रणक्षेत्र में मारा गया, सूली पर चढ़ा दिया गया या अंदमान को निर्वासित कर दिया गया था। जो बचा वह कुछ समय तक सहमा-दबा पड़ा रहा,

गुप्त विचार मन्थन में लगा रहा।

इस उलेमा वर्ग ने राजनीति और ब्रिटिश शिक्षा-प्रणाली का बहिष्कार करने का निर्णय लिया। मदरसा प्रणाली के द्वारा मुस्लिम समाज को अरबी, फारसी और उर्दू के माध्यम से इस्लाम की शुद्ध मजहबी शिक्षा देने का रास्ता अपनाया। इसी वर्ग ने 1866 में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देवबन्द नामक कस्बे में दारुल उलूम नामक मदरसे की स्थापना की। 1866 में दारुल उलूम की स्थापना का श्रेय मौलाना मुहम्मद कासिम ननौतवी (1833-1877) और मौलाना रशीद अहमद गंगोही (1828-1905) को जाता है। ये दोनों ही मौलाना 1857 में शामली जिले के थाना भवन विद्रोह में सहभागी थे। दारुल उलूम, देवबन्द के अनुकरण पर फिरंगी महल (लखनऊ), दारुल उलूम, मंजर इस्लाम (बरेली) और नदवातुल उलेमा (लखनऊ) आदि अन्य प्रसिद्ध मदरसे भी स्थापित हुए।

अहमदिया आन्दोलन के संस्थापक मिरजा गुलाम अहमद कादियानी तरीकत के समर्थक थे। इन्होंने ईसाई मिशनरियों तथा आर्य समाजियों के विवादात्मक रवैये पर प्रतिवाद या सफाई देते हुए अपना कार्य शुरू किया था। पाश्चात्य उदारवाद, ब्रह्मविद्या तथा हिन्दुओं के धार्मिक कार्य आदि का गहरा प्रभाव गुलाम अहमद पर पड़ा था। इसमें ब्रह्म समाज के समान आदर्श देखने को मिलते हैं। ये विधर्मियों से युद्ध करने के पक्षधर नहीं थे। इन्होंने पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के लिए कई स्कूल और कॉलेज खोले थे।

लाहौर के अंजुमन-ए-हिमायत-ए-इस्लाम के संस्थापक मुहम्मद शरीफ और शाहदीन सर सय्यद अहमद खान के अनुयायी थी। स्त्री-शिक्षा पर जोर देते हुए पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार करने के उद्देश्य से इस संस्था ने कई स्कूल खोले थे। यह ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा और काँग्रेस के प्रति विरोधी भाव रखते थे।

अलीगढ़ आन्दोलन की शुरुआत अलीगढ़ से हुई थी। इस आन्दोलन के संस्थापक सर सैय्यद अहमद खाँ थे। दिल्ली में पैदा हुए सैय्यद अहमद ने 1839 ई. में ईस्ट इंडिया कम्पनी में नौकरी कर ली थी। कम्पनी की न्यायिक सेवा में कार्य करते हुए 1857 ई. के विद्राह में उन्होंने कम्पनी का साथ दिया था। 1857 की महाक्रान्ति और उसकी असफलता के दुष्परिणाम उन्होंने अपनी आँखों से देखा था। उनका घर तबाह हो गया, निकट सम्बन्धियों का कत्ल हुआ, उनकी माँ जान बचाकर एक सप्ताह तक घोड़े के अस्तबल में छुपी रहीं। अपने परिवार की इस बर्बादी को देखकर उनका मन विचलित हो गया और उनके दिलो-दिमाग में राष्ट्रभक्ति की लहर करवटें लेने लगीं। इस बेचैनी से उन्होंने परेशान होगर भारत छोड़ने और मिस्र में बसने का फैसला किया। अंग्रेज़ों ने उनको अपनी ओर करने के लिए मीर सादिक़ और मीर रुस्तम अली को उनके पास भेजा और उन्हें ताल्लुका जहानाबाद देने का लालच दिया। यह

ऐसा मौका था कि वे इनके जाल में फँस सकते थे। वे धनाढ्य की जिन्दगी बसर कर सकते थे, लेकिन वे बहुत ही बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति थे। उन्होंने उस वक्त लालच को बुरी बला समझकर ठुकरा दी और राष्ट्रभक्ति को अपनाना बेहतर समझा।

सर सैय्यद अहमद खाँ ने यह महसूस किया कि अगर भारत के मुसलमानों को इस कोठरी से नहीं निकाला गया तो एक दिन अपनी कौम तबाह और बर्बाद हो जायेगी और वह कभी भी उठ न सकेगी। इसलिए उन्होंने मिस्र जाने का इरादा बदल दिया और कल्याण व अस्तित्व की मशाल लेकर अपनी कौम और मुल्क की तरफ बढ़ने लगे। यह सच है कि उन्होंने गैर-फौजी अंग्रेज़ों को अपने घर में पनाह दी, लेकिन उनके समर्थक बिल्कुल न थे, बल्कि वह इस्लामी शिक्षा व संस्कृति के चाहने वाले थे।

1870 ई. के बाद प्रकाशित 'डब्ल्यू हंटर' की पुस्तक 'इंडियन मुसलमान' में सरकार को यह सलाह दी गयी थी कि वे मुसलमानों से समझौता कर तथा उन्हें कुछ रियायतें देकर अपनी ओर मिलाये। अँग्रेजों के प्रति निष्ठा व्यक्त करने के उद्देश्य से सर सैय्यद अहमद खाँ ने 'राजभक्त मुसलमान' पत्रिका का प्रकाशन किया तथा बनारस के राजा शिवप्रसाद के साथ मिलकर 'देशभक्त ऐसोसिएशन' की स्थापना की। सर सैय्यद अहमद खाँ ने 1865 ई. में 'साइन्टिफ़िक सोसाइटी' की स्थापना की। जिसके माध्यम से अँग्रेजी भाषा की पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद किया जाता था। लगभग इसी दौरान मुसलमानों द्वारा पोषित भाषा, उर्दू के स्थान पर हिन्दी को लाने का आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन तथा साइन्टिफ़िक सोसाइटी के प्रकाशनों में उर्दू के स्थान पर हिन्दी लाने के प्रयासों से सैयद को विश्वास हो गया कि हिन्दुओं और मुसलमानों के रास्तों को अलग होना ही है। इसलिए उन्होंने इंग्लैंड की अपनी यात्रा 1869-1870 के दौरान 'मुस्लिम केंब्रिज' जैसी महान शिक्षा संस्थाओं की योजना तैयार कीं। उन्होंने भारत लौटने पर इस उद्देश्य के लिए एक समिति बनायी और मुसलमानों के उत्थान और सुधार के लिए प्रभावशाली पत्रिका तहदीब-अल-अख़लाक (सामाजिक सुधार) का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

सर सैय्यद अहमद खाँ ने 1875 ई. में अलीगढ़ में एक 'ऐंग्लो मुस्लिम स्कूल' जिसे 'ऐंग्लो ओरियंटल स्कूल' भी कहा जाता था, की स्थापना की। इस केन्द्र पर मुस्लिम धर्म, पाश्चात्य विषय तथा सभी विषयों की शिक्षा दी जाती थी। 1920 ई. में यही केन्द्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में सामने आया था। उन्होंने 1886 में ऑल इंडिया मुहमडन ऐजुकेशनल कॉन्फ्रेंस का गठन किया, जिसके वार्षिक सम्मेलन मुसलमानों में शिक्षा को बढ़ावा देने तथा उन्हें एक साझा मंच उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न स्थानों पर आयोजित किये जाते थे। सर सैय्यद अहमद खाँ ने मुस्लिम समुदाय को आधुनिक बनाने एवं इस्लाम धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर

करने का प्रयत्न किया। उन्होंने 'पीरी-मुरीदी प्रथा' एवं दास प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया। उनके विचार उनकी पत्रिका 'तहजीबुउल अखलाक' में मिलते हैं। उन्होंने कुरान पर टीका लिखी तथा ईश्वर ज्ञान की व्याख्या ईश्वरीय कार्य द्वारा होने की बात कही। सैय्यद अहमद ने अपने सुधार-प्रयासों द्वारा मुस्लिम उच्च वर्ग का उत्थान करना चाहा।

भारतीय नवजागरण के दौर में केरल के कुछ प्रबुद्ध मुसलमान पंडित भी मुस्लिम समाज के सुधार के लिए आगे आये। इनको तजदीद को मानने वाले उत्तर भारत के आधुनिकतावादियों के वर्ग में रखा जा सकता है। केरल में यह इस्लाही आन्दोलन नाम से जाता है। लगभग 1880 से शुरू होकर बीसवीं के आधी शती तक इनका नवीकरण कार्य केरल में बहुत सक्रिय रहा है। सूक्ष्म विश्लेषण करने से पता चलता है कि यह एक बहुस्तरीय नवीकरण प्रक्रिया थी। इसमें औपनिवेशिक आधुनिकता को पा लेने की इच्छा के साथ राष्ट्रीयता (Nationalism) और मोल-तोल की राजनीति (Politics of Bargaining) में जगह पाने की व्यग्रता के भाव भी निहित थे।

सनाउळ्ळा मक्ति तङ्गळ (1847-1912), वक्कम अब्दुल कादर मौलवी (1873-1932), शैक मुहम्मद हमदानी (मृ.1922), मौलाना चालिलकत कुञ्मम्मद हाजी (1856-1919) आदि इस्लाही आन्दोलन के आधुनिकतावादियों के नेतृत्व में केरल के मुस्लिम समुदाय में सुधार कार्य बहुत सक्रिय रहा है। इनको धार्मिक और सामुदायिक जीवन में घर कर ली कई जटिल समस्याओं के साथ-साथ औपनिवेशिक आधुनिकता की कई समस्याओं को सामना करना पड़ा था। इनका सुधार कार्य महज मौलिकता की ओर वापस जाने का ही नहीं था बल्कि वह निहायत प्रगतिशील एवं आधुनिकता की चुनौतियों का आलोचनात्मक हस्तक्षेप भी था।

केरल के आधुनिकतावादियों में मक्ति तङ्गळ का नाम उल्लेखनीय है। ब्रिटिश राज में वे एक अधिकारी थे। एक ओर उन्हें इस्लाम को विकृत रूप में प्रचारित करने वाले ईसाई मिशनरियों को सामना करना पड़ा तो दूसरी ओर अन्धविश्वास के कारण धर्म के सही मार्ग से विचलित अपने समुदाय के लोगों को। उनको महसूस हुआ कि केरल के मुस्लिम समुदाय को अलगावबोध एवं आधुनिकता की चुनौतियों से मुक्त कराने के लिए अंग्रेज़ी एवं पाश्चात्य शिक्षा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने समुदाय के लोगों को अपने यथार्थ को पहचानने और सजग रहने का निरन्तर उपदेश दिया। उनको पूरा विश्वास था कि मातृभाषा मलयालम एवं शासन की भाषा अंग्रेज़ी सीखने से समुदाय के लोग अपने धर्म, प्रान्त एवं राष्ट्र के प्रति गौरव अनुभव कर सकेंगे और यह नागरिक चेतना उनकी प्रगति एवं भौतिक समृद्धि का कारण बन जाएगा। उन्होंने लोगों को समझाया कि स्वस्थ धार्मिक एवं सामाजिक सम्बन्ध की स्थापना के लिए धर्म के नाम प्रचारित होने वाली गलत बातों से दूर रहना आवश्यक है।

केरल के मुस्लिम नवजागरण के नेताओं में चालिलकत्त कुञम्मद हाजी का नाम चिर स्मरणीय है। आप केरल के सर सैय्यद नाम से विख्यात हैं। उनकी नवीकरण प्रक्रियाएँ तथा शिक्षायी गतिविधियाँ बेमिसाल हैं। उन्होंने अरबी-मलयाळम लिपि में सुधार लाने का कार्य किया। धार्मिक शिक्षा को आधुनिक शिक्षा रीति के साथ जोड़कर कई पाठशालाएँ खोलीं और स्त्री-शिक्षा को बढ़ावा देने के कई कार्य किये। इस प्रकार उनकी गतिविधियों से केरल के मुस्लिम समुदाय में आत्मविश्वास पैदा हो गया था और इस्लाही नवीकरण प्रक्रिया को एक नई दिशा मिल गयी थी।

केरल के मुस्लिम समाज में जागरण एवं सुधार लाने की दृष्टि से शेख हमदानी तङ्ळ की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मदरसा शिक्षा के पुनर्सृजन एवं पुनर्संगठन के लिए आगे रखे गये उनके सुझाव समग्र एवं वैज्ञानिक थे। लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने आलप्पुषा जिला में 'लजनतुल मुहम्मदीया' और कोडुगल्लूर में 'मुस्लिम ऐक्य संखम' नामक संस्थाएँ खोली थीं। 1911-1915 के दौरान आप 'तिरुवितामकूर श्रीमूलम प्रजा समिति' के सदस्य थे। उस समिति में भी उन्होंने मुस्लिम समाज की शिक्षा एवं सरकारी नौकरी के लिए आवाज उठायी थी।

पूरे केरल में खासकर दक्षिण केरल के मुस्लिम समाज में नवजागरण का प्रकाश फैलाने की दृष्टि से 'वक्कम अब्दुल कादर मौलवी' का योगदान बेजोड़ है। आधुनिकता एवं ज्ञानोदय की चुनौतियों तथा समस्याओं का सामना करने के लिए उनके द्वारा किये गये सारे कार्य सराहनीय रहे हैं। 1905 में 'स्वदेशाभिमानी' नाम से एक पत्रिका निकालकर उन्होंने क्रान्तिकारी कार्य किया था। यह लन्दन के 'रोयिटर समाचार एजेंसी' से मिलकर संस्थापित केरल की प्रथम पत्रिका थी। मुद्रण के सारे पुर्जे इंग्लैंड से आयात किये गये थे। पीछे 'स्वदेशाभिमानी' नाम से विख्यात रामकृष्ण पिळ्ळा इसके मुख्य सम्पादक बन गये थे।

यद्यपि वक्कम मौलवी के इस्लाही आन्दोलन का उद्देश्य मुस्लिम समाज के लोगों का नवीकरण था तो भी उनमें राष्ट्रीय एवं नैतिक प्रतिबद्धता जाहिर थी। उनके नवीकरण कार्य का मुख्य ध्येय औपनिवेशिक विरोध ही था। आप शुद्ध इस्लामी ढंग की राजनैतिक सत्ता बनाने के पक्षधर नहीं थे। नवीकरण उनके लिए पतित धार्मिक स्थिति एवं कुरीतियों से केरल के मुस्लिम समाज को उत्थान की ओर ले जाने का मार्ग ही था।

पाक ए कुरान के महत्त्व सम्बन्धी मौलवी के विचार बिल्कुल 'अर्थोत्पादक' (Hermeniatical) सामाजिक चेतना पर आधारित था। द्वन्द्वात्मक दृष्टि से धर्म और समाज को समझने और मौलिक रूप से आधुनिकता के साथ हस्तक्षेप करने का आह्वान उनके विचारों में बिखरा पड़ा था। मौलवी के अनुसार 'इजतिहाद' का द्वार कोई बन्द नहीं कर सकता। आधुनिक विचारधारा एवं अनुभव के आधार पर उन्होंने

शरीअत सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण लोगों के सामने रखा। अपने सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति के द्वारा इस बात को स्पष्ट करने में आप सफल निकले कि इस्लाम द्वारा मान्य हो चुके चार मदहबों (शाफी, हनफी, हन्बली और मालिकी) या अन्य नियम शास्त्र ग्रन्थों से प्रतिपादित नियमों की सीमाओं के बाहर जाकर भी मुस्लिम समाज की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। पाक ए कुरआन के 'हदीद' सूरा के सूक्त ('दुहबानिय्यतन् इबतदऊहा'–पौरोहित्य उनका नया निर्माण है–अध्याय 57 का 27वाँ सूक्त) के द्वारा आप स्थापित कर सके कि इस्लाम में पुरोहित नाम का कोई दर्जा नहीं है।

इस प्रकार लगभग पाँच दशक तक मुस्लिम नवजागरण केरल में सक्रिय रहा है। उनके सुधार कार्यों से पता चलता है कि वह भूतकाल की ओर तीर्थ यात्रा करने वाला एक नवीकरण कार्य नहीं था बल्कि आधुनिकता के साथ चलाया गया एक प्रगतिशील हस्तक्षेप था। शरीअत के आधारभूत ग्रन्थों की प्रामाणिकता का सामना करते हुए स्त्री-शिक्षा, लिंग-समत्व, सामाजिक एवं धार्मिक मामलों में तार्किकता को बनाये रखने में वह सफल बना था।

समकालीन सन्दर्भ में सोचना पड़ता है कि भारतीय नवजागरण और अतीत के उन नवजागरण कालीन महानायकों से क्या सीखा जा सकता है जिससे हम वर्तमान को और समृद्ध कर सकें। हमें उन महानायकों की आँखों में झाँककर अपने मन में एक और प्रश्न का उत्तर टटोलने की जरूरत है कि 15 अगस्त, 1947 के बाद जो भारत हमने बनाया है क्या यह उन नवजागरण कालीन नायकों की आकांक्षाओं के अनुरूप है?